ग्रंथ-संख्या—९७

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

इस पुस्तक का पहला संस्करण सुषमा-निकुंज, प्रयाग
से प्रकाशित हुआ था।

पहला संस्करण नवंबर, १९३९
दूसरा संस्करण जनवरी, १९४३
मूल्य १॥)

मुद्रक
कृष्णाराम मेहता
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विज्ञापन

एकात सगीत का दूसरा सस्करण आपके सम्मुख है ; यह पहले सस्करण का पुनर्मुद्रण मात्र है। मूल्य की वृद्धि के लिए कागज और छपाई का बढ़ता हुआ दाम और दर उत्तरदाई है। सुरुचि का ध्यान रखते हुए सस्करण की सादगी, हमें आशा है, पाठकों को पसद आएगी।

प्रथम सस्करण के विज्ञापन से एकांत संगीत का यह परिचय हम पाठकों की सुविधा और जानकारी के लिए ज्यों का त्यो छाप रहे हैं :—

'एकात सगीत' 'निशा-निमंत्रण' के समान एक सौ गीतो का (यदि मुख पृष्ट वाली कविता को सम्मिलित कर लें तो १०१ गीतों का) सग्रह है। 'निशा-निमत्रण' की भाव-धारा ही 'एकात सगीत' मे प्रविष्ट होती दिखाई देती है। आगे चलकर इसका रूप वही रहा है या बदला है, बदला है तो अच्छे के लिए या बुरे के लिए, इसका निर्णय हम पाठकों के ऊपर छोड़ते है। सरसरी निगाह से देखते हुए दोनो रचनाओं में हमे कुछ ऊपरी अतर मालूम हुआ है। 'निशा-निमत्रण' मे एक साथी की कल्पना थी। उसके अतिम गीतों में बच्चन ने उसे विदा दे दी थी—'जाओ कल्पित

साथी मन के'। 'एकांत संगीत' मे उनका कोई साथी नही है। यह बात 'एकांत संगीत' के नाम को सार्थक करती है।

'एकात सगीत' के तीन गीत (७६, ८०, ६४) ससार को, दो गीत (१२, ५६) पक्षियों को, एक (६०) तारों को, एक (६१) रात को, एक (६७) बादल को, एक (४३) अपनी स्वर्गता पत्नी को, एक (१४) भूतपूर्व 'प्रेयसी' को और एक (६५) किसी संभाव्य सगिनी को सबोधित है। शेष ६० गीत या तो अपने आपको सबोधित हैं या उस शक्ति को जिसे बच्चन नियति, भाग्य, विधि आदि नामो से पुकारते है या केवल 'तुम' या 'तू' से सबोधित करते है।

'निशा निमत्रण' के गीत प्रायः निशा के वातावरण की छाया मे लिखे गए थे। 'एकात सगीत' मे इस वातावरण का बधन टूट गया है, यद्यपि कही-कही भावों को प्रकट करने के लिए वाता-वरण की आवश्यकता अनुभव करने पर उन्होंने गत के दृश्यों का उपयोग किया है।

'एकात संगीत' में छदो के कुछ नए प्रयोग भी मिलेगे। 'निशा-निमत्रण' मे गीतों का जो रूप उन्होंने निर्धारित किया था उसमे पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि मे अनेक बार स्वतत्रता लेकर उन्होंने यह दिखला दिया है कि वे स्वनिर्मित शैली के भी दास नहीं है। ऐसी स्वच्छदताएँ कहाँ तक भावनाओं की आतरिक प्रेरणा का प्रतिफल है, इसे भी हम पाठकों के ऊपर छोडते है।

'एकात संगीत' की एक और भी विशेषता है। बच्चन के अब तक के सभी संग्रहो मे कविताओं की तरतीब रचना-क्रम से भिन्न रही है। 'एकात सगीत' के गीतों का क्रम आदि से अंत तक रचना-क्रम के अनुसार है। आशा है पाठकगण बच्चन की इस आयोजना मे जीवन की भावनाओं का अधिक सच्चा, सजीव और स्वाभाविक रूप देख सकेंगे।

—प्रकाशक

एकांत संगीत

अपने को

सूची

एकात सगीत के गीत :—

एकात सगीत के गीत :— पृष्ठ संख्या

एकांत संगीत के गीत :—　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठ संख्या

एकात सगीत के गीत :—   पृष्ठ सख्या

एकात संगीत के गीत :—

पृष्ट सख्या

एकात सगीत के गीत :—

एकांत संगीत

तट पर है तरुवर एकाकी,
नौका है, सागर में,
अंतरिक्ष में खग एकाकी,
तारा है, अंबर मे;
भू पर वन, वारिधि पर वेड़े, नभ में उडु-खग मेला,
नर-नारी से भरे जगत में कवि का हृदय अकेला !

१

अब मत मेरा निर्माण करो!

तुमने न बना मुझको पाया,
युग-युग बीते, मैं घबराया;
भूलो मेरी विह्वलता को, निज लज्जा का तो ध्यान करो!
अब मत मेरा निर्माण करो!

इस चक्की पर खाते चक्कर
मेरा तन-मन-जीवन जर्जर;
हे कुंभकार, मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो!
अब मत मेरा निर्माण करो!

कहने की सीमा होती है,
सहने की सीमा होती है;
कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच-समझ अपमान करो!
अब मत मेरा निर्माण करो!

२

मेरे उर पर पत्थर धर दो !

जीवन की नौका का प्रिय धन
लुटा हुआ मणि-मुक्ता-कंचन
तो न मिलेगा, किसी वस्तु से इन खाली जगहों को भर दो !
मेरे उर पर पत्थर धर दो !

मंद पवन के मंद झकोरे,
लघु-लघु लहरों के हलकोरे
आज मुझे विचलित करते हैं, हल्का हूँ, कुछ भारी कर दो !
मेरे उर पर पत्थर धर दो !

पर क्यों मुझको व्यर्थ चलाओ ?
पर क्यों मुझको व्यर्थ बहाओ ?
क्यों मुझसे यह भार ढुलाओ ? क्यों न मुझे जल में लय कर दो !
मेरे उर पर पत्थर धर दो !

३

मूल्य दे सुख के क्षणों का!

एक पल स्वच्छंद होकर
तू चला जल, थल, गगन पर,
हाय, आवाहन वही था विश्व के चिर बंधनों का!
मूल्य दे सुख के क्षणों का!

पा निशा की स्वप्न-छाया
एक तूने गीत गाया,
हाय, तूने रुद्ध खोला द्वार शत-शत क्रंदनों का!
मूल्य दे सुख के क्षणों का!

आँसुओं से व्याज भरते
अनवरत लोचन सिहरते,
हाय, कितना बढ गया ऋण होठ के दो मधु कणों का!
मूल्य दे सुख के क्षणों का!

४

कोई गाता, मैं सो जाता !

संसृति के विस्तृत सागर पर
सपनों की नौका के अंदर
सुख-दुख की लहरों पर उठ-गिर बहता जाता मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

आँखों में भरकर प्यार अमर,
आशीष हथेली में भरकर
कोई मेरा सिर गोदी में रख सहलाता मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

मेरे जीवन का खारा जल,
मेरे जीवन का हालाहल
कोई अपने स्वर मे मधुमय कर बरसाता, मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !

५

मेरा तन भूखा, मन भूखा !

इच्छा, सब सत्यों का दर्शन,
सपने भी छोड़ गए लोचन !
मेरे अपलक युग नयनों में मेरा चंचल यौवन भूखा !
मेरा तन भूखा, मन भूखा !

इच्छा, सब जग का आलिंगन,
रूठा मुझसे जग का कण-कण !
मेरी फैली युग बाहों में मेरा सारा जीवन भूखा !
मेरा तन भूखा, मन भूखा !

आँखें खोले अगणित उडगण,
फैला है सीमा-हीन गगन !
मानव की अमिट बुभुक्षा में क्या अग-जग का कारण भूखा ?
मेरा तन भूखा, मन भूखा !

———

६

व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा ?

प्यासी आँखे, भूखी बाहे,
अंग-अंग की अगणित चाहे;
और काल के गाल समाता जाता है प्रतिक्षण तन मेरा !
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा ?

आशाओं का बाग लगा है,
कलि-कुसुमो का भाग जगा है,
पीले पत्तों-सा मुर्झाया जाता है प्रतिपल मन मेरा !
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा ?

क्या न किसी के मन को भाया,
दिल न किसी का बहला पाया ?
क्या मेरे उर के अंदर ही गूँज मिटा उर-क्रंदन मेरा !
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा ?

७

खिड़की से झाँक रहे तारे!

जलता है कोई दीप नहीं,
कोई भी आज समीप नहीं,
लेटा हूँ कमरे के अंदर बिस्तर पर अपना मन मारे!
खिड़की से झाँक रहे तारे!

सुख का ताना, दुख का बाना,
स्मृतियों ने है बुनना ठाना,
लो, कफ़न ओढ़ाता आता है कोई मेरे तन पर सारे!
खिड़की से झाँक रहे तारे!

अपने पर मैं ही रोता हूँ,
मैं अपनी चिता सँजोता हूँ,
जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अंगारे!
खिड़की से झाँक रहे तारे!

८

नभ में दूर-दूर तारे भी !

देते साथ-साथ दिखलाई,
विश्व समझता स्नेह-सगाई;
एकाकीपन का अनुभव, पर, करते हैं ये बेचारे भी !
नभ मे दूर-दूर तारे भी !

उर-ज्वाला को ज्योति बनाते,
निशि-पंथी को राह बताते,
जग की आँख बचा पी लेते ये अपने आँसू खारे भी !
नभ मे दूर-दूर तारे भी !

अंधकार से मैं घिर जाता,
रोना ही रोना बस भाता,
ध्यान मुझे जब-जब यह आता—
दूर हृदय से कितने मेरे, मेरे जो सबसे प्यारे भी !
नभ में दूर दूर तारे भी !

९

मै क्यों अपनी बात सुनाऊँ ?

जगती के सागर मे गहरे
जो उठ-गिरती अगणित लहरें,
उनमें एक लहर लघु मैं भी, क्यो निज चचलता दिखलाऊँ ?
मै क्यो अपनी बात सुनाऊँ ?

जगती के तरुवर मे प्रतिपल
जो लगते-गिरते पल्लव-दल,
उनमें एक पात लघु मै भी, क्यो निज मरमर-गायन गाऊँ ?
मैं क्यों अपनी बात सुनाऊँ ?

मुझ-सा ही जग भर का जीवन,
सब मे सुख-दुख, रोदन-गायन,
कुछ बतला, कुछ बात छिपा क्यो एक पहेली व्यर्थ बुझाऊँ ?
मै क्यो अपनी बात सुनाऊँ ?

१०

छाया पास चली आती है !

जड़ बिस्तर पर पड़ा हुआ हूँ,
तम-समाधि में गड़ा हुआ हूँ;
तन चेतनता-हीन हुआ है, साँस महज चलती जाती है !
छाया पास चली आती है !

तन सफ़ेद है, पट सफ़ेद है,
अंग-अंग में भरा भेद है,
निकट खिसकती देख इसे धक-धक करती मेरी छाती है !
छाया पास चली आती है !

हाथों में कुछ है प्याला-सा,
प्याले में कुछ है काला-सा,
जान गया क्या मुझे पिलाने यह साक़ीबाला लाती है !
छाया पास चली आती है !

११

मध्य निशा में पंछी बोला !

ध्वनित धरातल और गगन है,
राग नहीं है, यह क्रंदन है,
टूटे प्यारी नींद किसी की, इसने कंठ करुण निज खोला !
मध्य निशा में पंछी बोला !

निश्चित गाने का अवसर है,
सीमित रोने को निज घर है,
ध्यान मुझे जग का रखना है, धिक् मेरा मानव का चोला !
मध्य निशा में पंछी बोला !

कितनी रातों को मन मेरा
चाहा, करदूँ चीख सवेरा,
पर मैंने अपनी पीड़ा को चुप-चुप अश्रुकणों में घोला !
मध्य निशा में पंछी बोला !

१२

जा कहाँ रहा है विहग भाग ?

कोमल नीड़ों का सुख न मिला,
स्नेहालु दृगों का रुख न मिला,
मुँह-भर बोले, वह मुख न मिला, क्या इसीलिए, वन से विराग ?
जा कहाँ रहा है विहग भाग ?

यह सीमाओं से हीन गगन,
यह शरणस्थल से दीन गगन,
परिणाम समझकर भी तूने क्या आज दिया है विपिन त्याग ?
जा कहाँ रहा है विहग भाग ?

दोनों मे है क्या उचित काम ?—
मैं भी लूँ तेरा सग थाम,
या तू मुझसे मिलकर गाए जीवन-अभाव का करुण राग !
जा कहाँ रहा है विहग भाग ?

—

१३

जा रही है यह लहर भी!

चार दिन उर से लगाया,
साथ में रोई, रुलाया,
पर बदलती जा रही है आज तो इसकी नजर भी!
जा रही है यह लहर भी!

हाय, वह लहरी न आती,
जो सुधा का घूँट लाती,
जो न आकर लौटती फिर, कर मुझे देती अमर भी!
जा रही है यह लहर भी!

वो गई तृष्णा जगाकर,
वह गई पागल बनाकर,
आँसुओं से यह भिगाकर,
क्यो लहर आती नही है जो पिला जाती जहर भी!
जा रही है यह लहर भी!

१४

प्रेयसि, याद है वह गीत ?

गोद में तुझको लिटाकर,
कंठ में उन्मत्त स्वर भर
गा जिसे मैंने लिया था स्वर्ग का सुख जीत !
प्रेयसि, याद है वह गीत ?

है न जाने तू कहाँपर,
कंठ सूखा, क्षीणतर स्वर,
सुन जिसे मैं आज हो उठता स्वयं भयभीत !
प्रेयसि, याद है वह गीत ?

तू न सुनने को रही जब,
राग भी जब वह गया दब,
तब न मेरी ज़िंदगी के दिन गए क्यों बीत !
प्रेयसि, याद है वह गीत ?

१५

कोई नहीं, कोई नहीं !

यह भूमि है हाला-भरी,
मधुपात्र - मधुबाला - भरी,
ऐसा बुझा जो पा सके मेरे हृदय की प्यास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

सुनता, समझता है गगन
वन के विहंगों के वचन,
ऐसा समझ जो पा सके मेरे हृदय-उच्छ्वास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

मधुऋतु समीरण चला पड़ा,
वन ले नए पल्लव खड़ा,
ऐसा फिरा जो ला सके मेरे गए विश्वास को—
कोई नहीं, कोई नहीं !

———

१६

किसलिए अंतर भयंकर ?

चाहता मैं गान मन का
राग बन जाता गगन का,
किंतु मेरा स्वर मुझी में लीन हो मिटता निरंतर !
किसलिए अंतर भयंकर ?

चाहता वह गीत गाना,
सुन जिसे हो खुश जमाना,
किंतु मेरे गीत मुझको ही रुला जाते निरंतर !
किसलिए अंतर भयंकर ?

चाहता मैं प्यार मेरा
विश्व का बनता बसेरा,
किंतु अपने आपको ही मैं घृणा करता निरंतर !
किसलिए अंतर भयंकर ?

—

१७

अब तो दुख के दिवस हमारे !

मेरा भार स्वयं लेकरके
मेरी नाव स्वयं खेकरके
दूर मुझे रखते थे श्रम से, वे तो दूर सिधारे !
अब तो दुख के दिवस हमारे !

रह न गए जो हाथ बटाते,
साथ खिवाकर पार लगाते,
कुछ न सही तो साहस देते होकर खड़े किनारे !
अब तो दुख के दिवस हमारे !

डूब रही है नौका मेरी,
बंद जगत है आँखें तेरी,
मेरी संकट की घड़ियों के साक्षी नभ के तारे !
अब तो दुख के दिवस हमारे !

१८

मैंने गाकर दुख अपनाए!

कभी न मेरे मन को भाया,
जब दुख मेरे ऊपर आया,
मेरा दुख अपने ऊपर ले कोई मुझे बचाए!
मैंने गाकर दुख अपनाए!

कभी न मेरे मन को भाया,
जब-जब मुझको गया रुलाया,
कोई मेरी अश्रु-धार में अपने अश्रु मिलाए!
मैंने गाकर दुख अपनाए!

पर न दबा यह इच्छा पाता,
मृत्यु-सेज पर कोई आता,
कहता सिर पर हाथ फिराता—
'ज्ञात मुझे है, दुख जीवन मे तुमने बहुत उठाए!'
मैंने गाकर दुख अपनाए!

१६

चढ़ न पाया सीढ़ियों पर !

प्रात आया, भक्त आए,
पुष्प-जल की भेंट लाए,
देव-मंदिर पहुँच पाए,
औ' उन्हें देखा किया मैं लोचनों में नीर भर-भर !
चढ़ न पाया सीढ़ियों पर !

साँझ आई, भक्त लौटे,
भक्ति से अनुरक्त लौटे,
जान पाए—चाह मेरी वे गए कितनी कुचलकर ?
चढ़ न पाया सीढ़ियों पर !

सब गए जब, रात आई,
पथ-रज मैंने उठाई,
देवता मेरे मिले मुझको उसी रज से निकलकर !
चढ़ न पाया सीढ़ियों पर !

———

२०

क्या दंड के मैं योग्य था?

चलता रहूँ यह चाह दी,
पर एक ही तो राह दी,
किस भाँति होती दूसरी इस देह-यात्रा की कथा!
क्या दंड के मैं योग्य था?

तेरी रजा पर मैं चला,
तब क्या बुरा, तब क्या भला,
फिर भी मुझे मिलती सज़ा, तेरी निराली है प्रथा!
क्या दंड के मैं योग्य था?

यह दंड तेरे हाथ का
है चिह्न तेरे साथ का;
इस दंड से मैं मुक्त हो जाता कभी का, अन्यथा!
क्या दंड के मैं योग्य था?

———

२१

मैं जीवन में कुछ कर न सका !

जग में अँधियाला छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

अपनी ही आग बुझा लेता,
तो जी को धैर्य बँधा देता,
मधु का सागर लहराता था, लघु प्याला भी मैं भर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन-भर पछताएगा,
मरना तो होगा ही मुझको, जब मरना था तब मर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

२२

कुछ भी नहीं, कुछ भी नही !

उर मे छलकता प्यार था,
दृग मे भरा उपहार था,
तुम क्यों डरे, था चाहता मैं तो प्रणय-प्रतिकार मे—
कुछ भी नहीं, कुछ भी नही !

मुझको गए तुम छोड़कर,
सब स्वप्न मेरा तोड़कर,
अब फाड़ आँखे देखता अपना विशद ससार में—
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं !

कुछ मौन आँसू मे गला,
कुछ मूक स्वासों मे ढला,
कुछ फाड़कर निकला गला,
पर, हाय, हो पाई कमी मेरे हृदय के भार में—
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं !

२३

जैसा गाना था, गा न सका !

गाना था वह गायन अनुपम,
क्रदन दुनिया का जाता थम,
अपने विक्षुब्ध हृदय को भी मैं अब तक शात बना न सका !
जैसा गाना था, गा न सका !

जग की आहों को उर मे भर
कर देना था मुझको सस्वर,
निज आहो के आशय को भी मैं जगती को समझा न सका !
जैसा गाना था गा न सका !

जन-दुख-सागर पर जाना था,
डुबकी ले थाह लगाना था,
निज आँसू की दो बूँदों मे मैं कूल-किनारा पा न सका !
जैसा गाना था, गा न सका !

२४

गिनती के गीत सुना पाया !

जब जग यौवन से लहराया,
दृग पर जल का परदा छाया,
फिर मैंने कंठ रुँधा पाया,
जग की सुषमा का क्षण बीता मैं कर मल-मलकर पछताया !
गिनती के गीत सुना पाया !

संघर्ष छिड़ा अब जीवन का,
कवि के मन का, पशु के तन का,
निर्द्वंद-मुक्त हो गाने का अब तक न कभी अवसर आया !
गिनती के गीत सुना पाया !

जब तन से फ़ुरसत पाऊँगा,
नभ - मंडल पर मँडराऊँगा,
नित नीरव गायन गाऊँगा,
यदि शेष रही मन की सत्ता मिटने पर मिट्टी की काया।
गिनती के गीत सुना पाया !

२५

किसके लिए ? किसके लिए ?

जीवन मुझे जो ताप दे,
जग जो मुझे अभिशाप दे,
जो काल भी संताप दे, उसको सदा सहता रहूँ,
किसके लिए ? किसके लिए ?

चाहे सुने कोई नहीं,
हो प्रतिध्वनित न कभी कहीं,
पर नित्य अपने गीत में निज वेदना कहता रहूँ,
किसके लिए ? किसके लिए ?

क्यों पूछता दिनकर नहीं,
क्यों पूछता गिरिवर नहीं,
क्यों पूछता निर्झर नहीं,
मेरी तरह, जलता रहूँ, गलता रहूँ, बहता रहूँ,
किसके लिए ? किसके लिए ?

२६

बीता इकतीस बरस जीवन !

वे सब साथी ही हैं मेरे,
जिनको गृह-गृहिणी-शिशु घेरे,
जिनके उर में है शांति बसी, जिनका मुख है सुख का दर्पण !
बीता इकतीस बरस जीवन !

कब उनका भाग्य सिहाता हूँ,
उनके सुख में सुख पाता हूँ,
पर कभी-कभी उनसे अपनी तुलना कर उठता मेरा मन !
बीता इकतीस बरस जीवन !

मैं जोड़ सका यह निधि सयत्न—
खंडित आशाएँ, स्वप्न भग्न,
असफल प्रयोग, असफल प्रयत्न,
कुछ टूटे-फूटे शब्दों मे अपने टूटे दिल का क्रंदन !
बीता इकतीस बरस जीवन !

२७

मेरी सीमाएँ बतलादो !

यह अनत नीला नभमंडल
देता मूक निमत्रण प्रतिपल,
मेरे चिर चचल पंखों को इनकी परिमित परिधि बतादो !
मेरी सीमाएँ बतलादो !

कल्पवृक्ष पर नीड़ बनाकर
गाना मधुमय फल खा-खाकर !—
स्वप्न देखनेवाले खग को जग का कड़ुआ सत्य चिखादो !
मेरी सीमाएँ बतलादो !

मैं कुछ अपना ध्येय बनाऊँ,
श्रेय बनाऊँ, प्रेय बनाऊँ
अत कहाँ मेरे जीवन का एक झलक मुझको दिखलादो !
मेरी सीमाएँ बतलादो !

२८

किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है एक ओर असित निशा,
है एक ओर अरुण दिशा,
पर आज स्वप्नो में फँसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है एक ओर अगम्य जल,
है एक ओर सुरम्य थल,
पर आज लहरों से ग्रसा, यह भी नहीं मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

है हार एक तरफ पड़ी,
है जीत एक तरफ खड़ी,
सघर्ष-जीवन मे धँसा, यह भी नही मैं जानता—
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?

२९

जन्मदिन फिर आ रहा है!

हूँ नहीं वह काल भूला,
जब खुशी के साथ फूला
सोचता था जन्मदिन उपहार नूतन ला रहा है!
जन्मदिन फिर आ रहा है!

वर्ष-दिन फिर शोक लाया,
सोच दृग मे नीर छाया,
बढ़ रहा हूँ—भ्रम, मुझे कटु काल खाता जा रहा है!
जन्मदिन फिर आ रहा है!

वर्ष-गाँठो पर मुदित-मन
मैं पुनः, पर अन्य कारण—
दुखद जीवन का निकटतर अंत आता जा रहा है!
जन्मदिन फिर आ रहा है!

३०

क्या साल पिछला दे गया ?

कुछ देर मैं पथ पर ठहर,
अपने दृगों को फेर कर
लेखा लगा लूँ काल का जब साल आने को नया।
क्या साल पिछला दे गया ?

चिंता, जलन, पीड़ा वही
जो नित्य जीवन में रहीं,
नव रूप मे मैंने सहीं,
पर हो असह्य उठी कई परिचित निगाहों की दया !
क्या साल पिछला दे गया ?

दो-चार बूँदे प्यार की
बरसीं, कृपा संसार की,
(हा, प्यास पारावार की)
जिनके सहारे चल रही है जिदगी यह बेहया
क्या साल पिछला दे गया ?

३१

सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब सुप्त वड़वानल जगा,
जब खौलने सागर लगा,
उमड़ीं तरंगें ऊर्ध्वगा,
ले तारकों को भी डुबा, तुमने कहा—हो शीत, जम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब उठ पड़ा मारुत मचल
हो अग्निमय, रजमय, सजल,
झोंके चले ऐसे प्रबल,
दें पर्वतों को भी उड़ा, तुमने कहा—हो मौन, थम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

जब जग पड़ी तृष्णा अमर,
दृग में फिरी विद्युत-लहर,
आतुर हुए ऐसे अधर,
पी लें अतल मधु-सिंधु को, तुमने कहा—मदिरा खतम !
सोचा, हुआ परिणाम क्या ?

३२

फिर वर्ष नूतन आ गया !

सूने तमोमय पथ पर
अभ्यस्त मैं अब तक विचर,
नव वर्ष मे मैं खोज करने को चलूँ क्यों पथ नया !
फिर वर्ष नूतन आ गया !

निश्चित अँधेरा तो हुआ,
सुख कम नहीं मुझको हुआ,
द्विविधा मिटी, यह भी नियति की है नहीं कुछ कम दया !
फिर वर्ष नूतन आ गया !

दो-चार किरणे प्यार की
मिलती रहे ससार की,
जिनके उजाले मे लिखूँ मै जिदगी का मर्सिया !
फिर वर्ष नूतन आ गया !

२२

यह अनुचित माँग तुम्हारी है !

रोएँ-रोएँ तन छिद्रित कर
कहते हो, जीवन में रस भर !
हँस लो असफलता पर मेरी, पर यह मेरी लाचारी है ।
यह अनुचित माँग तुम्हारी है !

कोना-कोना दुख से उर भर
कहते हो, खोल सुखों के स्वर !
मानव की परवशता के प्रति यह व्यंग तुम्हारा भारी है ।
यह अनुचित माँग तुम्हारी है !

समकक्षी से परिहास भला,
जो ले बदला, जो दे बदला,
मैं न्याय चाहता हूँ केवल, जिसका मानव अधिकारी है ।
यह अनुचित माँग तुम्हारी है !

३४

क्या ध्येय निहित मुझमें तेरा ?

जन-रव मे घुल-मिल जाने से,
जन की वाणी मे गाने से
संकोच किया क्यों करता है यह क्षीण, करुणतम स्वर मेरा !
क्या ध्येय निहित मुझमे तेरा ?

जग-धारा मे बह जाने से,
अपना अस्तित्व मिटाने से
घबराया करता किस कारण दो कण खारा आँसू मेरा ?
क्या ध्येय निहित मुझमे तेरा ?

क्यों भय से उठता सिहर-सिहर,
जब सोचा करता हूँ पल-भर,
उन कलि-कुसुमो की टोली पर,
जो आती सन्ध्या को, प्रातः को कूच किया करती डेरा ?
क्या ध्येय निहित मुझमें तेरा ?

३५

मैं क्या कर सकने में समर्थ ?

मैं आधि-ग्रस्त, मै व्याधि-ग्रस्त ,
मै काल-त्रस्त, मैं कर्म-त्रस्त ,
मैं अर्थ ध्येय में रख चलता, मुझसे हो जाता है अनर्थ !
मै क्या कर सकने में समर्थ ?

मुझसे विधि, विधि की सृष्टि क्रुद्ध ,
मुझसे संसृति का क्रम विरुद्ध ,
इसलिए व्यर्थ मेरे प्रयत्न, इस कारण सब प्रार्थना व्यर्थ !
मै क्या कर सकने में समर्थ ?

निर्जीव पक्ति मे निर्विवेक
क्रदन रख रचना पद अनेक—
क्या यह भी जग का कर्म एक ?
मुझको अब तक निश्चित न हुआ, क्या मुझसे होगा सिद्ध अर्थ !
मैं क्या कर सकने मे समर्थ ?

३६

पूछता, पाता न उत्तर !

जब चला जाता उजाला,
लौटती जब विहग-माला,
"प्रात को मेरा विहग जो उड़ गया था, लौट आया ?"—
पूछता, पाता न उत्तर !

जब गगन में रात आती,
दीप - मालाएँ जलाती,
"अस्त जो मेरा सितारा था हुआ, फिर जगमगाया ?"—
पूछता, पाता न उत्तर !

पूर्व मे जब प्रात आता,
भृ ग-दल मधुगीत गाता,
" मौन जो :मेरा भ्रमर था हो गया, फिर गुनगुनाया ?"—
पूछता, पाता न उत्तर !

३७

तब रोक न पाया मैं आँसू !

जिसके पीछे पागल होकर
मैं दौड़ा अपने जीवन-भर,
जब मृगजल में परिवर्तित हो मुझपर मेरा अरमान हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

जिसमें अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर-अमर,
जब विस्मृति के पीछे छिपकर मुझपर वह मेरा गान हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

मेरे पूजन-आराधन को,
मेरे सपूर्ण समर्पण को,
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा !
तब रोक न पाया मैं आँसू !

३८

गध आती है सुमन की!

किस कुसुम का श्वास छूटा?
किस कली का भाग्य फूटा?
लुट गई सहसा खुशी इस कालिमा मे किस चमन की!
गंध आती है सुमन की!

आज कवि का हृदय टूटा,
आज कवि का कठ फूटा,
विश्व समझेगा हुई क्षति आज क्या मेरे भवन की!
गध आती है सुमन की!

अल्प गध, विशाल आँगन,
गीत क्षीण, प्रचंड क्रंदन,
है असभव गमक, गुजन,
एक ही गति है कुसुम के प्राण की, कवि के वचन की!
गंध आती है सुमन की!

३९

है हार नहीं यह जीवन मे !

जिस जगह प्रबल हो तुम इतने,
हारे सब है मानव जितने,
उस जगह पराजित होने मे है ग्लानि नहीं मेरे मन मे !
है हार नहीं यह जीवन मे !

मदिरा-मज्जित कर मन-काया
जो चाहा तुमने कहलाया,
क्या जीता यदि जीता मुझको मेरी निर्बलता के क्षण में !
है हार नहीं यह जीवन मे !

सुख जहाँ विजित होने मे है,
अपना सब कुछ खोने मे है,
मैं हारा भी जीता ही हूँ जग के ऐसे समरागण मे !
है हार नहीं यह जीवन मे !

४०

मत मेरा ससार मुझे दो !

जग की हँसी, घृणा, निर्ममता
सह लेने की तो दो क्षमता,
शाति-भरी मुसकानोवाला यदि न सुखद परिवार मुझे दो !
मत मेरा ससार मुझे दो !

ज्योति न दो ऐसी तम घन मे,
राह दिखा, दे धीरज मन में,
जला मुझे जड़ राख बनादे ऐसे तो अगार मुझे दो !
मत मेरा ससार मुझे दो !

योग्य नहीं यदि मै जीवन के,
जीवन के चेतन लक्षण के,
मुझे खुशी से दो मत जीवन, मरने का अधिकार मुझे दो !
मत मेरा संसार मुझे दो !

४१

मैंने मान ली तब हार !

पूर्ण कर विश्वास जिसपर,
हाथ मैं जिसका पकड़कर
था चला, जब शत्रु बन बैठा हृदय का मीत,
मैंने मान ली तब हार !

विश्व ने बातें चतुर कर
चित्त जब उसका लिया हर,
मैं रिझा जिसको न पाया गा सरल मधु गीत,
मैंने मान ली तब हार !

विश्व ने कंचन दिखाकर
कर लिया अधिकार उसपर,
मैं जिसे निज प्राण देकर भी न पाया जीत,
मैंने मान ली तब हार !

४२

देखतीं आकाश आँखे !

श्वेत अक्षर, पृष्ट काला,
तारकों की वर्णमाला,
पढ रही है एक जीवन का जटिल इतिहास आँखे !
देखतीं आकाश आँखे !

सत्य यों होगी कहानी,
बात यह समझी न जानी,
खो रही है आज अपने आपपर विश्वास आँखे !
देखतीं आकाश आँखे !

छिप गए तारे गगन के,
शून्यता आगे नयन के,
किस प्रलोभन से करातीं नित्य निज उपहास आँखे !
देखतीं आकाश आँखे !

४३

तेरा यह करुण अवसान !

जब तपस्या-काल बीता,
पाप हारा, पुण्य जीता,
विजयिनी, सहसा हुई तू, हाय, अंतर्धान !
तेरा यह करुण अवसान !

जब तुझे पहचान पाया,
देवता को जान पाया,
खींच तुझको ले गया तब काल का आह्वान !
तेरा यह करुण अवसान !

जब मिटा भ्रम का अँधेला,
जब जगी वरदान-वेला,
तू अनंत निशीथ-निद्रा में हुई लयमान !
तेरा यह करुण अवसान !

४४

बुलबुल जा रही है आज!

प्राण सौरभ से भिदा है,
कंटकों से तन छिदा है,
याद भोगे सुख-दुखों की आ रही है आज!
बुलबुल जा रही है आज!

प्यार मेरा फूल को भी,
प्यार मेरा शूल को भी,
फूल से मैं खुश, नही मैं शूल से नाराज!
बुलबुल जा रही है आज!

आ रहा तूफान हर-हर,
अब न जाने यह उड़ाकर
फेंक देगा किस जगह पर!
तुम रहो खिलते, महकते कलि - प्रसून - समाज!
बुलबुल जा रही है आज!

४५

जब करूँ मैं काम,

प्रेरणा मुझको नियम हो,
जिस घड़ी तक बल न कम हो,
मैं उसे करता रहूँ यदि काम हो अभिराम !
जब करूँ मैं काम !

जब करूँ मैं गान,
हो प्रवाहित राग उर से,
हो तरंगित सुर मधुर से,
गति रहे जब तक न इसका हो सके अवसान !
जब करूँ मै गान !

जब करूँ मैं प्यार,
हो न मुझपर कुछ नियन्त्रण,
कुछ न सीमा, कुछ न बंधन,
तब रुकूँ जब प्राण प्राणों से करे अभिसार !
जब करूँ मैं प्यार !

४६

मिट्टी दीन कितनी, हाय !

हृदय की ज्वाला जलाती,
अश्रु की धारा बहाती,
और उर-उच्छ्वास में यह काँपती निरुपाय !
मिट्टी दीन कितनी, हाय !

शून्यता एकांत मन की,
शून्यता जैसे गगन की,
थाह पाती है न इसका मृत्तिका असहाय !
मिट्टी दीन कितनी, हाय !

वह किसे दोषी बताए,
और किसको दुख सुनाए,
जब कि मिट्टी साथ मिट्टी के करे अन्याय !
मिट्टी दीन कितनी, हाय !

४७

घुल रहा मन चाँदनी में !

पूर्णमासी की निशा है,
ज्योति-मज्जित हर दिशा है,
खो रहे हैं आज निज अस्तित्व उडगण चाँदनी में !
घुल रहा मन चाँदनी में !

हूँ कभी मैं गीत गाता,
हूँ कभी आँसू बहाता,
पर नही कुछ शाति पाता,
व्यर्थ दोनों आज रोदन और गायन चाँदनी मे !
घुल रहा मन चाँदनी मे !

मौन होकर बैठता जब,
भान-सा होता मुझे तब,
हो रहा अर्पित किसी को आज जीवन चाँदनी मे !
घुल रहा मन चाँदनी में !

४८

व्याकुल आज तन - मन - प्राण !

तन बदन का स्पर्श भूला,
पुलक भूला, हर्ष भूला,
आज अधरों से अपरिचित हो गई मुसकान !
व्याकुल आज तन - मन - प्राण !

मन नहीं मिलता किसी से,
मन नहीं खिलता किसी से,
आज उर - उल्लास का भी हो गया अवसान !
व्याकुल आज तन - मन - प्राण !

आज गाने का न दिन है,
बात करना भी कठिन है,
कठ - पथ में क्षीण श्वासें हो रहीं लयमान।
व्याकुल आज तन - मन - प्राण !

४६

मैं भूला-भूला-सा जग में!

अगणित पथी है इस पथ पर,
है किंतु न परिचित एक नज़र,
अचरज है मैं एकाकी हूँ जग के इस भीड़-भरे मग में!
मैं भूला-भूला-सा जग में!

अब भी पथ के कंकड़-पत्थर,
कुश, कंटक, तरुवर, गिरि, गह्वर,
यद्यपि युग-युग बीता चलते, नित नूतन-नूतन डग-डग में!
मैं भूला-भूला-सा जग में!

कर में साथी जड़ दंड अटल,
कंधों पर सुधियों का संबल,
दुख के गीतों से कंठ भरा, छाले, क्षत, क्षार भरे पग में!
मैं भूला-भूला-सा जग में!

५०

खोजता है द्वार बंदी !

भूल इसको जग चुका है,
भूल इसको मग चुका है,
पर तुला है तोड़ने पर तीलियाँ - दीवार बंदी !
खोजता है द्वार बंदी !

सीखचे ये क्या हिलेंगे,
हाथ के छाले छिलेंगे,
मानने को पर नहीं तैयार अपनी हार बंदी !
खोजता है द्वार बंदी !

तीलियो, अब क्या हँसोगी,
लाज से भू में धँसोगी,
मृत्यु से करने चला है अब प्रणय-अभिसार बंदी !
खोजता है द्वार बंदी !

५१

मैं पाषाणों का अधिकारी !

है अग्नि-तपित मेरा चुंबन,
है वज्र-विनिंदक भुज-बंधन,
मेरी गोदी में कुम्हलाईं कितनी वल्लरियाँ सुकुमारी !
मैं पाषाणों का अधिकारी !

दो बूँदों से छिछला सागर,
दो फूलों से हल्का भूधर,
कोई न सका ले यह मेरी पूजा छोटी-सी, पर भारी !
मैं पाषाणों का अधिकारी !

मेरी ममता कितनी निर्मम,
कितना उसमें आवेग अगम !
(कितना मेरा उसपर संयम !)
असमर्थ इसे सह सकने को कोमल जगती के नर-नारी !
मैं पाषाणों का अधिकारी !

५२

तू देख नही यह क्यों पाया ?

तारावलियाँ सो जाने पर,
देखा करतीं तुझको निशि भर,
किस बाला ने देखा अपने बालम को इतने लोचन से !
तू देख नही यह क्यो पाया ?

तुझको कलिकाएँ मुसकाकर,
आमन्त्रित करती हैं दिन भर,
किस प्यारी ने चाहा अपने प्रिय को ऐसे उत्सुक मन से ?
तू देख नही यह क्यों पाया ?

तरुमाला ने कर फैलाए,
आलिंगन में बस तू आए,
किसने निज प्रणयी को बाँधा इतने आकुल भुज-बंधन में ?
तू देख नहीं यह क्यों पाया ?

५३

दुर्दशा मिट्टी की होती !

कर आशा, विचार, स्वप्नों से,
भावों से शृंगार,
देख निमिष भर लेता कोई सब शृंगार उतार !
आज पाया जो, कल खोती !

मिट्टी ले चलती है सिर पर
सोने का संसार,
मंज़िल पर होता है मिट्टी पर मिट्टी का भार !
भार यह क्यों इतना ढोती !

प्रति प्रभात का अंत निशा है,
प्रति रजनी का, प्रात,
मिट्टी सहती तोम तिमिर का, किरणों का आघात !
सुप्त हो जगती, जग सोती !
दुर्दशा मिट्टी की होती !

५४

क्षतशीश मगर नतशीश नहीं !

बनकर अदृश्य मेरा दुश्मन
करता है मुझपर वार सघन,
लड लेने की मेरी हवसें मेरे उर के ही बीच रहीं !
क्षतशीश मगर नतशीश नहीं !

मिट्टी है अश्रु बहाती है,
मेरी सत्ता तो गाती है;
अपनी ? ना-ना, उसकी पीड़ा की ही मैंने कुछ बात कही !
क्षतशीश मगर नतशीश नहीं !

चोटों से घबराऊँगा कब,
दुनिया ने भी जाना है जब,
निज हाथ - हथौड़े से मैंने निज वक्षस्थल पर चोट सही !
क्षतशीश मगर नतशीश नहीं !

५५

यातना जीवन की भारी !

चेतनता पहनाई जाती
जड़ता का परिधान,
देव और पशु में छिड़ जाता है संघर्ष महान !
हार की दोनों की बारी !

तन-मन की आकांक्षाओं का
दुर्बलता है नाम,
एक असंयम-संयम दोनों का अंतिम परिणाम !
पुण्य-पापों की बलिहारी !

ध्येय मरण है, गाओ पथ पर
चल जीवन के गीत,
जो रुकता, चुप होता, कहता जग उसको भयभीत !
बड़ी मानव की लाचारी !
यातना जीवन की भारी !

५६

दुनिया अब क्या मुझे छलेगी !

बदली जीवन की प्रत्याशा,
बदली सुख-दुख की परिभाषा,
जग के प्रलोभनो की मुझसे अब क्या दाल गलेगी !
दुनिया अब क्या मुझे छलेगी !

लड़ना होगा जग-जीवन से,
लड़ना होगा अपने मन से,
पर न उठूँगा फूल विजय से, और न हार खलेगी।
दुनिया अब क्या मुझे छलेगी !

शेष अभी तो मुझमे जीवन,
वश में है तन, वश में है मन,
चार कदम उठकर मरने पर मेरी लाश चलेगी !
दुनिया अब क्या मुझे छलेगी !

५७

त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

जब रजनी के सूने क्षण मे,
तन-मन के एकाकीपन मे
कवि अपनी विह्वल वाणी से अपना व्याकुल मन बहलाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

जब उर की पीड़ा से रोकर,
फिर कुछ सोच-समझ चुप होकर
विरही अपने ही हाथो से अपने आँसू पोंछ हटाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

पथी चलते-चलते थककर
बैठ किसी पथ के पत्थर पर
जब अपने ही थकित करों से अपना विथकित पाँव दबाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

५८

चाँदनी में साथ छाया !

मौन में डूबी निशा है,
मौन-डूबी हर दिशा है,
रात भर में एक ही पत्ता किसी तरु ने गिराया !
चाँदनी में साथ छाया !

एक बार विहग बोला,
एक बार समीर डोला,
एक बार किसी पखेरू ने परों को फड़फड़ाया !
चाँदनी में साथ छाया !

होठ इसने भी हिलाए,
हाथ इसने भी उठाए,
आज मेरी ही व्यथा के गीत ने सुख संग पाया !
चाँदनी में साथ छाया !

—

५९

सशंकित नयनों से मत देख!

खाली मेरा कमरा पाकर,
सूखे तिनके-पत्ते लाकर,
तूने अपना नीड़ बनाया—कौन किया अपराध?
सशंकित नयनों से मत देख!

सोचा था जब घर जाऊँगा,
कमरे को सूना पाऊँगा,
देख तुझे उमड़ा पड़ता है उर में स्नेह अगाध!
सशंकित नयनों से मत देख!

मित्र बनाऊँगा मैं तुझको,
बोल करेगा प्यार न मुझको?
और सुनाएगा न मुझे निज गायन भी, एकाध?
सशंकित नयनों से मत देख!

६०

ओ गगन के जगमगाते दीप !

दीन जीवन के दुलारे
खो गए जो स्वप्न सारे,
ला सकोगे क्या उन्हें फिर खोज हृदय समीप ?
ओ गगन के जगमगाते दीप !

यदि न मेरे स्वप्न पाते,
क्यों नहीं तुम खोज लाते
वह घड़ी चिर शांति दे जो पहुँच प्राण समीप।
ओ गगन के जगमगाते दीप !

यदि न वह भी मिल रही है,
है कठिन पाना—सही है,
नींद को ही क्यों न लाते खींच पलक समीप ?
ओ गगन के जगमगाते दीप !

———

६१

ओ अँधेरी से अँधेरी रात!

आज गम इतना हृदय मे,
आज तम इतना हृदय मे,
छिप गया है चाँद-तारो का चमकता गात!
ओ अँधेरी से अँधेरी रात,

दिख गया जग-रूप सच्चा
ज्योति मे, यह बहुत अच्छा,
हो गया कुछ देर को प्रिय तिमिर का सघात!
ओ अँधेरी से अँधेरी रात!

प्रात किरणो के निचय से
तम न जाएगा हृदय से,
किस लिए फिर चाहता मै हो प्रकाश-प्रभात!
ओ अँधेरी से अँधेरी रात!

ए० ६

६२

मेरा भी विचित्र स्वभाव!

लक्ष्य से अनजान मैं हूँ,
त्रस्त मन-तन-प्राण मैं हूँ,
व्यस्त चलने में मगर हर वक्त मेरे पाँव!
मेरा भी विचित्र स्वभाव!

कुछ नहीं मेरा रहेगा,
जो सदा सबसे कहेगा,
वह चलेगा लाद इतना भाव और अभाव!
मेरा भी विचित्र स्वभाव!

उर व्यथा से आँख रोती,
सूज उठती, लाल होती,
किंतु खुलकर गीत गाते हैं हृदय के घाव!
मेरा भी विचित्र स्वभाव!

६३

डूबता अवसाद में मन !

यह तिमिर से पीन सागर,
तल-तटों से हीन सागर,
किंतु है इसमें न धाराएँ, न लहरें औ' न कंपन !
डूबता अवसाद में मन !

मैं तरंगों से लड़ा हूँ
और तगड़ा ही पड़ा हूँ,
पर नियति ने आज बाँधे हैं हृदय के साथ पाहन !
डूबता अवसाद में मन !

डूबता जाता निरंतर,
थाह तो पाता कहीं पर,
किंतु फिर-फिर डूब उतराते उठा है ऊब जीवन !
डूबता अवसाद में मन !

६४

उर मे अग्नि के शर मार—

जब कि मैं मधु स्वप्नमय था,
सब दिशाओं से अभय था,
तब किया तुमने अचानक यह कठोर प्रहार,
उर मे अग्नि के शर मार!

सिंह-सा मृग को गिराकर,
शक्ति सारे अंग की हर,
सोख क्षण भर में लिया निःशेष जीवन सार,
उर मे अग्नि के शर मार!

हाय, क्या थी भूल मेरी?
कौन था निर्दय अहेरी?
पूछते है व्यर्थ उर के घाव आँखें फाड़!
उर मे अग्नि के शर मार!

———

६५

जुए के नीचे गर्दन डाल !

देख सामने बोझी गाड़ी,
देख सामने पथ पहाड़ी,
चाह रहा है दूर भागना, होता है बेहाल !
जुए के नीचे गर्दन डाल !

तेरे पूर्वज भी घबराए,
घबराए, पर क्या बच पाए;
इसमें फँसना ही पड़ता है—है विचित्र यह जाल !
जुए के नीचे गर्दन डाल !

यह गुरु भार उठाना होगा,
इस पथ से ही जाना होगा;
तेरी खुशी-नाखुशी का है नहीं किसी को ख्याल !
जुए के नीचे गर्दन डाल !

६६

दुखी-मन से कुछ भी न कहो !

व्यर्थ उसे है ज्ञान सिखाना,
व्यर्थ उसे दर्शन समझाना,
उसके दुख से दुखी नहीं हो, तो बस दूर रहो !
दुखी-मन से कुछ भी न कहो !

उसके नयनो का जल खारा,
है गगा की निर्मल धारा;
पावन कर देगी तन-मन को क्षण भर साथ बहो !
दुखी-मन से कुछ भी न कहो !

देन बड़ी सबसे यह विधि की,
है समता इससे किस निधि की ?
दुखी दुखी को कहो, भूलकर उसे न दीन कहो !
दुखी-मन से कुछ भी न कहो !

६७

आज घन मन भर बरस लो !

भाव से भरपूर कितने,
भूमि से तुम दूर कितने,
आँसुओं की धार से ही धरणि के प्रिय पग परस लो !
आज घन मन भर बरस लो !

ले तुम्हारी भेंट निर्मल
आज अचला हरित - अंचल;
हर्ष क्या इसपर न तुमको—आँसुओं के बीच हँस लो !
आज घन मन भर बरस लो !

रुक रहा रोदन तुम्हारा,
हास पहले ही सिधारा,
और तुम भी तो रहे मिट—मृत्यु मे निज मुक्ति - रस लो !
आज घन मन भर बरस लो !

६८

स्वर्ग के अवसान का अवसान !

एक पल था स्वर्ग सुंदर,
दूसरे पल स्वर्ग खँडहर,
तीसरे पल थे थकित कर स्वर्ग की रज छान !
स्वर्ग के अवसान का अवसान !

ध्यान था मणि - रत्न ढेरी
से तुलेगी राख मेरी,
पर जगत में स्वर्ग, तृण की राख एक समान !
स्वर्ग के अवसान का अवसान !

राख में भी रख न पाया,
आज अंतिम भेंट लाया,
अश्रु की गंगा इसे दो बीच अपने स्थान !
स्वर्ग के अवसान का अवसान !

—

६९

यह व्यग नहीं देखा जाता !

निःसीम समय की पलको पर
पल और पहर में क्या अंतर;
बुद्बुद की क्षण-भगुरता पर मिटनेवाला बादल हँसता !
यह व्यग नहीं देखा जाता !

दोनों अपनी सत्ता मे सम ;
किसमे क्या ज्यादा, किसमें कम ?
पर बुद्बुद की चचलता पर, बुद्बुद जो खुद चचल हँसता !
यह व्यंग नही देखा जाता !

बुद्बुद बादल में अतर है,
समता मे ईर्ष्या का डर है,
पर मेरी दुर्बलताओं पर मुझसे ज्यादा दुर्बल हँसता !
यह व्यंग नहीं देखा जाता !

———

७०

तुम्हारा लौह चक्र आया !

कुचल चला अचला के वन घन,
बसे नगर सब निपट निठुर बन,
चूर हुई चट्टान, क्षार पर्वत की दृढ़ काया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

अगणित ग्रह-नक्षत्र गगन के
टूट पिसे, मरु-सिकता-कण के
रूप उडे, कुछ धुवाँ-धुवाँ-सा अंबर में छाया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

तुमने अपना चक्र उठाया,
अचरज से निज मुख फैलाया,
दंत-चिह्न केवल मानव का जब उसपर पाया !
तुम्हारा लौह चक्र आया !

७१

हर जगह जीवन विकल है!

तृषित मरुथल की कहानी,
हो चुकी जग मे पुरानी,
किंतु वारिधि के हृदय की प्यास उतनी ही अटल है!
हर जगह जीवन विकल है!

रो रहा विरही अकेला,
देख तन का मिलन मेला,
पर जगत में दो हृदय के मिलन की आशा विफल है!
हर जगह जीवन विकल है!

अनुभवी इसको बताएँ,
व्यर्थ मत मुझसे छिपाएँ;
प्रेयसी के अधर-मधु मे भी मिला कितना गरल है!
हर जगह जीवन विकल है!

७२

जीवन का विष बोल उठा है!

मूँद जिसे रक्खा मधुघट से,
मधुबाला के श्यामल पट से,
आज विकल, विह्वल स्वप्नों के अंचल को वह खोल उठा है!
जीवन का विष बोल उठा है!

बाहर का शृंगार हटाकर
रत्नाभूषण, रंजित अंबर,
तन में जहाँ-जहाँ पीड़ा थी कवि का हाथ टटोल उठा है!
जीवन का विष बोल उठा है!

जीवन का कटु सत्य यहाँ है,
यहाँ नहीं तो और कहाँ है?
और सबूत यही है इससे कवि का मानस डोल उठा है!
जीवन का विष बोल उठा है!

७२

अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

वृक्ष हों भले खड़े,
हों घने, हों बड़े,
एक पत्र-छाँह भी माँग मत, माँग मत, माँग मत !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

तू न थकेगा कभी !
तू न थमेगा कभी !
तू न मुड़ेगा कभी !—कर शपथ, कर शपथ, कर शपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

यह महान दृश्य है—
चल रहा मनुष्य है
अश्रु-स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ !
अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !

७४

जीवन भूल का इतिहास !

ठीक ही पथ को समझकर
मैं रहा चलता उमर भर,
किंतु पग-पग पर बिछा था भूल का छल पाश !
जीवन भूल का इतिहास !

'काटती भूलें प्रतिच्चण,
कह उन्हे हल्का करूँ मन'—
कर गया पर शीघ्रता में शत्रु पर विश्वास !
जीवन भूल का इतिहास !

भूल क्यों अपनी कही थी,
भूल क्या यह भी नहीं थी !
अब सहो विश्वासघाती विश्व का उपहास !
जीवन भूल का इतिहास !

७५

नभ में वेदना की लहर !

मर भले जाएँ दुखी जन,
अमर उनका आर्त क्रंदन;
क्यों गगन विक्षुब्ध, विह्वल विकल आठों पहर ?
नभ में वेदना की लहर !

वेदना से ज्वलित उडगण,
गीतमय, गतिमय समीरण,
उठ, बरस, मिटते सजल घन ;
वेदना होती न तो यह सृष्टि जाती ठहर
नभ मे वेदना की लहर !

बन गिरेगा शीत जल कण,
कर उठेगा मधुर गुंजन,
ज्योतिमय होगा किरण बन,
कभी कवि उर का कुपित, कटु और काला जहर ?
नभ में वेदना की लहर !

७६

छोड़ मैं आया वहाँ मुसकान !

स्वार्थ का जिसमें न था कण,
ध्येय था जिसका समर्पण,
जिस जगह ऐसे प्रणय का था हुआ अपमान !
छोड़ मैं आया वहाँ मुसकान !

भाग्य दुर्जय और दुर्दम
हो कठोर, कराल, निर्मम,
जिस जगह मानव प्रयासों पर हुआ बलवान !
छोड़ मैं आया वहाँ मुसकान !

पात्र सुखियों की खुशी का,
व्यंग का अथवा हँसी का,
जिस जगह समझा गया दुखिया हृदय का गान !
छोड़ मैं आया वहाँ मुसकान !

७७

जीवन शाप या वरदान?

सुप्त को तुमने जगाया,
मौन को मुखरित बनाया,
करुण क्रंदन को बताया क्यों मधुरतम गान?
जीवन शाप या वरदान?

सजग फिर से सुप्त होगा,
गीत फिर से गुप्त होगा,
मध्य मे अवसाद का ही क्यों किया सम्मान?
जीवन शाप या वरदान?

पूर्ण भी जीवन करोगे,
हर्ष से क्षण-क्षण भरोगे,
तो न कर दोगे उसे क्या एक दिन बलिदान?
जीवन शाप या वरदान?

७८

जीवन में शेष विषाद रहा!

कुछ टूटे सपनों की बस्ती,
मिटनेवाली यह भी हस्ती,
अवसाद बसा जिस खँडहर मे, क्या उसमे ही उन्माद रहा!
जीवन में शेष विषाद रहा!

यह खँडहर ही था रंगमहल,
जिसमे थी मादक चहल-पहल,
लगता है यह खँडहर जैसे पहले न कभी आबाद रहा!
जीवन मे शेष विषाद रहा!

जीवन मे थे सुख के दिन भी,
जीवन में थे दुख के दिन भी,
पर हाय हुआ ऐसा कैसे, सुख भूल गया, दुख याद रहा!
जीवन में शेष विषाद रहा!

—

७६

अग्नि देश से आता हूँ मैं!

झुलस गया तन, झुलस गया मन,
झुलस गया कवि-कोमल जीवन्,
किंतु अग्नि वीणा पर अपने दग्ध कंठ से गाता हूँ मैं!
अग्नि देश से आता हूँ मैं!

स्वर्ण शुद्ध कर लाया जग में,
उसे लुटाता आया मग में,
दीनों का मैं वेश किए, पर दीन नहीं हूँ, दाता हूँ मैं!
अग्नि देश से आता हूँ मैं!

तुमने अपने कर फैलाए,
लेकिन देर बड़ी कर आए,
कंचन तो लुट चुका, पथिक, अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं!
अग्नि देश से आता हूँ मैं!

७८

जीवन में शेष विषाद रहा !

कुछ टूटे सपनो की बस्ती,
मिटनेवाली यह भी हस्ती,
अवसाद बसा जिस खँडहर में, क्या उसमे ही उन्माद रहा !
जीवन मे शेष विषाद रहा !

यह खँडहर ही था रंगमहल,
जिसमें थी मादक चहल-पहल,
लगता है यह खँडहर जैसे पहले न कभी आबाद रहा !
जीवन मे शेष विषाद रहा !

जीवन मे थे सुख के दिन भी,
जीवन में थे दुख के दिन भी,
पर हाय हुआ ऐसा कैसे, सुख भूल गया, दुख याद रहा !
जीवन में शेष विषाद रहा !

८१

जीवन खोजता आधार !

हाय, भीतर खोखला है,
बस मुलम्मे की कला है,
इसी कुंदन के डले का नाम जग में प्यार !
जीवन खोजता आधार !

बूँद आँसू की गलाती,
आह छोटी-सी उड़ाती,
नींद-वंचित नेत्र को क्या स्वप्न का संसार !
जीवन खोजता आधार !

विश्व में वह एक ही है,
अन्य समता में नहीं है,
मूल्य से मिलता नहीं, वह मृत्यु का उपहार !
जीवन खोजता आधार !

८०

सुनकर होगा अचरज भारी!

दूध नहीं जमती पत्थर पर,
देख चुकी इसको दुनिया भर,
कठिन सत्य पर लगा रहा हूँ सपनों की फुलवारी!
सुनकर होगा अचरज भारी!

गूँज मिटेगा क्षण भर कण में
गायन मेरा, निश्चय मन में,
फिर भी गायक ही बनने की कठिन साधना सारी!
सुनकर होगा अचरज भारी!

कौन देवता? नहीं जानता,
कुछ फल होगा, नहीं मानता,
बलि के योग्य बनूँ, इसकी मैं करता हूँ तैयारी!
सुनकर होगा अचरज भारी!

८१

जीवन खोजता आधार!

हाय, भीतर खोखला है,
बस मुलम्मे की कला है,
इसी कुंदन के डले का नाम जग में प्यार!
जीवन खोजता आधार!

बूँद आँसू की गलाती,
आह छोटी-सी उड़ाती,
नींद-वञ्चित नेत्र को क्या स्वप्न का संसार!
जीवन खोजता आधार!

विश्व में वह एक ही है,
अन्य समता में नहीं है,
मूल्य से मिलता नहीं, वह मृत्यु का उपहार!
जीवन खोजता आधार!

८२

हा, मुझे जीना न आया!

नेत्र जलमय, रक्त-रंजित,
मुख विकृत, अधरोष्ठ कंपित
हो उठे तब गरल पीकर भी गरल पीना न आया!
हा, मुझे जीना न आया!

वेदना से नेह जोड़ा,
विश्व में पीटा ढिंढोरा,
प्यार तो उसने किया है, प्यार को जिसने छिपाया!
हा, मुझे जीना न आया!

संग में पाकर किसीका
कर सका अभिनय हँसी का,
पर अकेले बैठकर मैं मुसकरा अब तक न पाया!
हा, मुझे जीना न आया!

८२

अब क्या होगा मेरा सुधार !

तू ही करता मुझसे बिगाड़,
तो मैं न मानता कभी हार,
मैं काट चुका अपने ही पग अपने ही हाथों ले कुठार !
अब क्या होगा मेरा सुधार !

सभव है तब मै था पागल,
था पागल, पर था क्या दुर्बल,
चोटों में गाया गीत, समझ तू इसको निर्बल की पुकार !
अब क्या होगा मेरा सुधार !

फिर भी बल सचित करता हूँ,
मन मे दम - साहस भरता हूँ,
जिसमे न आह निकले मुख से जब हो तेरा अतिम प्रहार !
अब क्या होगा मेरा सुधार !

८१

मैं न सुख से मर सकूँगा !

चाहता जो काम करना,
दूर है मुझसे सँवरना,
टूटते दम से विफल आहें महज मैं भर सकूँगा !
मैं न सुख से मर सकूँगा !

गलतियाँ - अपराध, माना,
भूल जाएगा जमाना,
किंतु अपने आपको कैसे क्षमा मैं कर सकूँगा !
मैं न सुख से मर सकूँगा !

कुछ नहीं पल्ले पड़ा तो,
थी तसल्ली मैं लड़ा तो,
मौत यह आकर कहेगी, अब नहीं मैं लड़ सकूँगा !
मैं न सुख से मर सकूँगा !

८५

आगे हिम्मत करके आओ !

मधुबाला का राग नहीं अब,
अंगूरों का बाग नहीं अब,
अब लोहे के चने मिलेंगे, दाँतों को अजमाओ !
आगे हिम्मत करके आओ !

दीपक हैं नभ के अंगारे,
चलो इन्हीं के साथ - सहारे,
राह ? नहीं है राह यहाँ पर, अपनी राह बनाओ !
आगे हिम्मत करके आओ !

लपट लिपटने को आती है,
निर्भय अग्नि गान गाती है,
आलिंगन के भूखे प्राणी, अपने भुज फैलाओ !
आगे हिम्मत करके आओ !

८६

मुँह क्यों आज तम की ओर?

कालिमा से पूर्ण पथ पर,
चल रहा हूँ मैं निरंतर,
चाहता हूँ देखना मैं इस तिमिर का छोर!
मुँह क्यों आज तम की ओर?

ज्योति की निधियाँ अपरिमित,
कर चुका संसार संचित,
पर छिपाए है बहुत कुछ सत्य यह तम घोर!
मुँह क्यों आज तम की ओर?

बहुत संभव कुछ न पाऊँ,
किंतु कैसे लौट आऊँ,
लौटकर भी देख पाऊँगा नहीं मैं भोर!
मुँह क्यों आज तम की ओर?

—

८७.

विष का स्वाद बताना होगा !

ढाली थी मदिरा की प्याली,
चूसी थी अधरों की लाली,
कालकूट आनेवाला अब, देख नहीं घबराना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा !

आँखों से यदि अश्रु छनेगा,
कटुतर यह कटु पेय बनेगा,
ऐसे पी सकता है कोई, तुझको हँस पी जाना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा !

गरल पान करके तू बैठा,
फेर पुतलियाँ, कर-पग ऐंठा,
यह कोई कर सकता, मुर्दे, तुझको अब उठ गाना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा !

८८

कोई विरला विष खाता है!

मधु पीनेवाले बहुतेरे,
और सुधा के भक्त घनेरे,
गज भर की छातीवाला ही विष को अपनाता है!
कोई विरला विष खाता है!

पी लेना तो है ही दुष्कर,
पा जाना उसका दुष्करतर,
बड़ा भाग्य होता है जब विष जीवन में आता है!
कोई विरला विष खाता है!

स्वर्ग सुधा का है अधिकारी,
कितनी उसकी कीमत भारी!
किंतु कभी विष-मूल्य अमृत से ज़्यादा पड़ जाता है!
कोई विरला विष खाता है!

८९

मेरा जोर नहीं चलता है!

स्वप्नों की देखी निष्ठुरता,
स्वप्नों की देखी भगुरता,
फिर भी बार-बार आ करके स्वप्न मुझे निशिदिन छलता है!
मेरा जोर नही चलता है!

सूनेपन के सुंदरपन को
कैसे दृढ़ करवा दूँ मन को!
उतनी शक्ति नही है मुझमे जितनी मन में चंचलता है!
मेरा जोर नही चलता है!

ममता यदि मन से मिट पाती,
देवो की गद्दी हिल जाती!
प्यार, हाय, मानव जीवन की सबसे भारी दुर्बलता है!
मेरा जोर नही चलता है!

९०

'मैंने शाति नहीं जानी है !

त्रुटि कुछ है मेरे अदर भी,
त्रुटि कुछ है मेरे बाहर भी,
दोनों को त्रुटिहीन बनाने की मैंने मन मे ठानी है !
मैंने शाति नहीं जानी है !

आयु बितादी यत्नों मे लग,
उसी जगह मैं, उसी जगह जग,
कभी-कभी सोचा करता अब, क्या मैंने की नादानी है !
मैंने शांति नहीं जानी है !

पर निराश होऊँ किस कारण,
क्या पर्याप्त नहीं आश्वासन ?
दुनिया से मानी, अपने से मैंने हार नही मानी है !
मैंने शाति नहीं जानी है ।

९१

अब खँडहर भी टूट रहा है!

गायन से गुंजित दीवारें
दिखलाती हैं दीर्घ दरारें,
जिनसे करुण, कर्णकटु, कर्कश, भयकारी स्वर फूट रहा है!
अब खँडहर भी टूट रहा है!

बीते युग की कौन निशानी
शेष रही थी आज मिटानी?
किंतु काल की इच्छा ही तो, लुटे हुए को लूट रहा है!
अब खँडहर भी टूट रहा है!

महानाश में महासृजन है,
महामरण में ही जीवन है,
था विश्वास कभी मेरा भी, किंतु आज तो छूट रहा है!
अब खँडहर भी टूट रहा है!

९२

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर!

युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित, अविचल प्रतिपल,
मनुज-पराजय के स्मारक हैं मठ, मस्जिद, गिरजाघर!
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर!

मिला नहीं जो स्वेद बहाकर,
निज लोहू से भीग-नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है जग में कहलाए नर!
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर!

झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बँधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन!
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर!
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर!

———

९३

कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा!

जिन चीजों की चाह मुझे थी,
जिनकी कुछ परवाह मुझे थी,
दीं न समय से तूने, असमय क्या ले उन्हें करूँगा!
कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा!

मैंने बाँहों का बल जाना,
मैंने अपना हक पहचाना,
जो कुछ भी बनना है मुझको अपने आप बनूँगा!
कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा!

व्यर्थ मुझे है अब समझाना,
व्यर्थ मुझे है अब फुसलाना,
अंतिम बार कहे देता हूँ, रूठा हूँ, न मनूँगा!
कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा!

९४

मुझे न सपनों से बहलाओ!

धोखा आदि-अंत है जिनका,
क्या विश्वास करूँ मैं इनका;
सत्य हुआ मुखरित जीवन में, मत सपनों का गीत सुनाओ!
मुझे न सपनों से बहलाओ!

जग का सत्य स्वप्न हो जाता,
सपनों से पहले खो जाता,
मैं कर्तव्य करूँगा लेकिन मुझमें अब मत मोह जगाओ!
मुझे न सपनों से बहलाओ!

सच्चे मन से मैं कहता हूँ,
नहीं भावना में बहता हूँ,
मैं उजाड़ अब चला, विश्व तुम अपना सुख-संसार बसाओ!
मुझे न सपनों से बहलाओ!

९५

मुझको प्यार न करो, डरो !

जो मैं था अब रहा कहाँ हूँ,
प्रेत बना निज घूम रहा हूँ,
बाहर ही से देख न आँखों पर विश्वास करो !
मुझको प्यार न करो, डरो !

मुर्दे साथ चुके सो मेरे,
देकर जड़ बाँहों के फेरे,
अपने बाहुपाश में मुझको सोच - विचार भरो !
मुझको प्यार न करो, डरो !

जीवन के सुख-सपने लेकर,
तुम आओगी मेरे पथ पर,
है मालूम कहूँगा क्या मैं, मेरे साथ मरो !
मुझको प्यार न करो, डरो !

९६

तुम गए झकझोर!

कर उठे तरु-पत्र मरमर,
कर उठा कांतार हरहर,
हिल उठा गिरि, गिर शिलाएँ कर उठीं रव घोर!
तुम गए झकझोर!

डगमगाई भूमि पथ पर,
फट गई छाती दरककर,
शब्द कर्कश छा गया इस छोर से उस छोर!
तुम गए झकझोर!

हिल उठा कवि का हृदय भी,
सामने आई प्रलय भी,
किंतु उसके कंठ में था गीतमय कलरोर!
तुम गए झकझोर!

९७

ओ अपरिपूर्णता की पुकार !

शत - शत गीतों में हो मुखरित,
कर लक्ष - लक्ष उर में वितरित,
कुछ हल्का तुम कर देती हो मेरे जीवन का व्यथा-भार !
ओ अपरिपूर्णता की पुकार !

जग ने क्या मेरी कथा सुनी,
जग ने क्या मेरी व्यथा सुनी,
मेरी अपूर्णता में आई जग की अपूर्णता रूप धार !
ओ अपरिपूर्णता की पुकार !

कर्मों की ध्वनियाँ आएँगी,
निज बल - पौरुष दिखलाएँगी,
पर्याप्त, अखिल नभमंडल में तुम गूँज उठी हो एक बार !
ओ अपरिपूर्णता की पुकार !

६८

सुखमय न हुआ यदि सूनापन!

मैं समझूँगा सब व्यर्थ हुआ—
लंबी-काली रातों मे जग
तारे गिनना, आहे भरना, करना चुपके-चुपके रोदन!
सुखमय न हुआ यदि सूनापन!

मैं समझूँगा सब व्यर्थ हुआ—
भीगी-ठंडी रातों मे जग
अपने जीवन के लोहू से लिखना अपना जीवन-गायन!
सुखमय न हुआ यदि सूनापन!

मैं समझूँगा सब व्यर्थ हुआ—
सूने दिन, सूनी रातो मे
करना अपने बल से बाहर संयम-पालन, तप-व्रत-साधन!
सुखमय न हुआ यदि सूनापन!

९९

अकेला मानव आज खड़ा है !

दूर हटा स्वर्गों की माया,
स्वर्गाधिप के कर की छाया,
सूने नभ, कठोर पृथ्वी का ले आधार अड़ा है !
अकेला मानव आज खड़ा है !

धर्मों-संस्थाओं के बंधन
तोड़ बना है वह विमुक्त-मन,
संवेदना-स्नेह-संबल भी खोना उसे पड़ा है !
अकेला मानव आज खड़ा है !

जब तक हार मानकर अपने
टेक नहीं देता वह घुटने,
तब तक निश्चय महाद्रोह का झंडा सुदृढ़ गड़ा है !
अकेला मानव आज खड़ा है !

१००

कितना अकेला आज मैं!

संघर्ष में टूटा हुआ,
दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!

भटका हुआ संसार में,
अकुशल जगत व्यवहार में,
असफल सभी व्यापार में, कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!

खोया सभी विश्वास है,
भूला सभी उल्लास है,
कुछ खोजती हर साँस है, कितना अकेला आज मैं!
कितना अकेला आज मैं!

समाप्त

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

आकुल अंतर

(बच्चन की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४०-४२ में लिखित ७१ गीतों का संग्रह है। कवि को अपनी पिछली रचना 'एकांत संगीत, लिखते समय आभास हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आंतरिक अशांति को व्यक्त न करके बाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्होंने अपने गीतों को 'आकुल अंतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में रख-कर आंतरिक और बाह्य दोनो प्रकार की विक्षुब्धता को अलग अलग वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओं के गीत इन तीन वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि ने 'आकुल अंतर' माला के अंतर्गत लिखित ७१ गीतों को संग्रहीत किया है।

'एकांत संगीत' से 'आकुल अंतर' में कितना परिवर्तन आया है यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकांत संगीत' का अंतिम गीत था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अंतर' का अंतिम गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो 'आकुल अंतर' पढ़िए।

छंद और तुक के बंधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

निशा निमंत्रण

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का संग्रह है। 'निशा निमत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरंभ होता है। १३-१३ पंक्तियो मे लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी संपूर्णता मे अंग्रेज़ी के सॉनेट्स की समता करते है।

'निशा निमत्रण' के गीत सायंकाल से आरंभ होकर प्रातःकाल समाप्त होते हैं। रात्रि के अधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि यह सौ गीतों का सग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

एक ओर तो इनमे प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है दूसरी ओर हर प्राकृतिक दृश्य के साथ कवि की भावनाओं का ऐसा संबंध दिखाया गया है मानो कवि की भावनाएँ स्वय उन प्राकृतिक दृश्यों मे स्थूल रूप पा गई हैं। सूर्यास्त के साथ कवि की आशाएँ टूट गई हैं। रात के अधकार में कवि का शोक छा गया है। प्रभात की अरुणिमा में भविष्य का सकेत कर कवि ने विदा ले ली है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजिए।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधु कलश

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'सुषमा', 'कवि की निराशा', 'री हरियाली', 'कवि का गीत', 'पथ भ्रष्ट', 'कवि का उपहास', 'माँझी', 'लहरो का निमत्रण', 'मेघदूत के प्रति' और 'गुलहज़ारा' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है संभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियों की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य में व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता में किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधु कलश' की अधिकाश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारो ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधु कलश' की कविताएँ पढ़िए। इनके अन्दर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी संदेश है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुबाला

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १६३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', "मधुपायी, 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला' 'जीवन तरुवर', "प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल' 'इस पार-उस पार', 'पाँच पुकार', "पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों मे मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वय मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। इन गीतों मे आप पाऍगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छदों का स्वछद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंद जी ने लिखा था कि इनमे बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फिलासफी है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

मधुशाला

(पाँचवा संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुंह से सुनी या स्वयं पढ़ी हैं। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण से उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

ख़ैयाम की मधुशाला

(दूसरा संस्करण)

यह फ़िट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपांतर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परंतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दीख पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनंद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचंद ने जनवरी '३६ के 'हंस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया; उसी रंग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि:—
Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know very much like the poet astronomer of Nishapur.

दूसरे संस्करण में मूल अंग्रेज़ी अनुवाद भी दिया गया है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

तेरा हार

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की सन १६२६-३० में लिखित, स्वीकृत, आशे, नैराश्य, कीर, झंडा, बंदी, बदी मित्र, कोयल, मध्याह्न, चुंबन, मधुकर, दुख में, दुखों का स्वागत, आदर्श प्रेम, तुमसे, मधुरस्मृति, दुखिया का प्यार, कलियों से, विरह-विषाद, मूक प्रेम, उपहार, मेरा धर्म, संकोच, प्रेम का आरभ, आत्म सदेह, जन्म दिवस शीर्षक कविताओं का संग्रह है।

यद्यपि यह बच्चन की सर्व प्रथम कृति है, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी प्रशंसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है। किसी कवि की अंतिम कृतियाँ ही उसकी उच्चता का आभास देती हैं, परतु कवि ने कहाँ से प्रारंभ करके वह उच्चता प्राप्त की इसे उसकी आरभिक रचनाएँ ही बतला सकती हैं।

'विश्वमित्र' ने इसके विषय में लिखा था, 'इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी में प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढ़ने से मालूम होता है कि वे इस कला मे सिद्ध-हस्त हैं। कविताएँ सुंदर और सरस हैं और भाव यथेष्ट परिपक्व हैं।'

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।